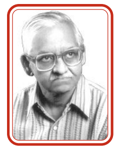

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-28 | मार्च-2018 | अंक-3

तप और तपस्या में अंतर

तप का अर्थ होता है - निखरना

तपस्या का ध्येय होता है - जीवन के सारे पहलुओं को निखारना

हम कुछ भी करें - हमारा मन वहां अवश्य रहेगा

जैसी मन की अवस्था होगी - वैसा ही मन का प्रभाव उस 'कार्यक्षेत्र' पर पड़ेगा। यदि मन में अखण्डता उभरी हुई होगी-तो 'कार्यक्षेत्र' पर अखण्ड, अव्यक्त और शाश्वत सत्ता का प्रभाव पड़ेगा।

जीवन के अनन्त पहलुओं को संवारने का,

केवल 'ध्यान' ही एक रास्ता है।

-डॉ० शम्भूनाथ

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

12.1.1918

8.2.2008

ध्यान के बाद क्रियाशीलता

✍ महर्षि श्री महेश योगी

जब से 'ध्यान' का सम्बन्ध, वृत्ति बनाने से हो गया - तब से 'ध्यान' शब्द का नाम खराब होने लगा। पश्चिम में कोई व्यवहारिक व्यक्ति, 'ध्यान' से सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। यदि यह खतरा, हमें पहले मालूम होता-तो 'ध्यान' का कुछ और ही नाम रख लेते। परन्तु हिमालय से आने और 'ध्यान' का प्रभाव दिखने के बाद, हमने सोचा कि यह एक बहुत अच्छा शब्द है। हम जानते हैं कि 'ध्यान' शब्द के साथ, बहुत सी 'भ्रामक धारणायें' जुड़ गयी हैं। इसलिए हमने सोचा कि उसके साथ, एक विशेषण लगाना अच्छा होगा-और उसे 'भावातीत' नाम दिया। हमने सोचा इससे इस 'ध्यान का अर्थ' स्पष्ट हो जायेगा। इस 'ध्यान' में अपनी चेतना, 'भावातीत असीम सत्ता' में चली जाती है। अत: उसे एक स्वरूप देने के लिए-'भावातीत ध्यान' कह दिया।

धीरे धीरे समय ने, एक शब्द की रचना की -'चेतना विज्ञान'।

जहां तक हमारा सम्बन्ध है-न तो नाम और न ही किसी प्रकार की धारणा-हमारे आन्दोलन के प्रचार का आधार रही है। उसका प्रचार, लाखों ध्यान साधकों के दैनिक जीवन में लाभ के परिणाम स्वरूप हुआ है-अत: अब हमें, इस बात की चिन्ता नहीं है कि; यह 'ध्यान' किस नाम से पुकारा जाता है? 'भावातीत ध्यान' के बीस वर्ष के प्रचार ने, सारे संसार के लोगों में जीवन के आन्तरिक मूल्यों के प्रति, काफी रुचि जागृत कर दी है।

'आध्यात्मिक' शब्द का, वैसा ही भ्रामक अर्थ है-जैसा 'ध्यान' शब्द का है, परन्तु इस आन्दोलन के दस वर्ष में ही, 'आध्यात्मिक' शब्द के इस वैज्ञानिक युग में, अधिक सजीवता आ गयी है। यद्यपि इस 'सुन्दर ज्ञान' को हम, इतनी शीघ्रता से प्रसारित नहीं कर पाये हैं-जितना आवश्यक था, पर समय उसका दायित्व लेगा।

हम 'भावातीत ध्यान' सिखाते जाते हैं और यह कहते जाते हैं कि-'ध्यान और क्रियाशीलता'। इस सही ध्यान सिखाने और ध्यान की जानकारी देने में, अपनी शक्ति केन्द्रित करने को महत्व देते हैं। दुर्भाग्य वश सभ्यता ने, 'ध्यान' का अर्थ - जीवन के किसी भिन्न आदर्श के सन्दर्भ में लिया-जो ध्यान करते हैं, वे धार्मिक

जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। पहले यह कहा जाता था कि

(1) तुम दो काम एक साथ नहीं कर सकते–

(2) दो स्वामियों की सेवा, एक साथ नहीं कर सकते।

(3) तुम अध्यात्मवादी और भौतिकवादी, एक ही समय में नहीं हो सकते।

जब ऐसी धारणा थी – तब आध्यात्मिक बनने के लिये, लोगों को बहुत अंश में भौतिकता छोड़नी पड़ती थी। इस प्रकार की 'वैराग्य भावना' ने, 'विरक्त जीवन' को जन्म दिया, परन्तु इस सबकी आवश्यकता नहीं है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कोई कुटुम्ब में रहता है, समाज में या अकेला किसी पेड़ के नीचे रहता है।

'भावातीत ध्यान' से आध्यात्मिकता आती है।

भावातीत ध्यान से मन अन्तरतम की गहराई में जाता है और 'भावातीत चेतना' लेकिर बाहर आता है। मन की क्रियाशीलता–जिससे कि 'भावातीत चेतना' प्राप्त करने के बाद, फिर क्या? फिर – क्रियाशीलता–जिससे कि 'भावातीत चेतना', निश्चित रूप से स्थायी बन जाय। आरम्भ में, जब हम 'ध्यान के बाद क्रियाशीलता' में जाते हैं–तब वह 'विशुद्ध चेतना' मिट जाती है। परन्तु इस प्रकार मिटना ही, उस 'विशुद्ध चेतना' के स्थायी होने का मार्ग है। जब आपके रुपये आपके पास से निकल कर दूसरों के हाथ में पहुंच जाते हैं–तब आप कहते हैं–कि नेक व्यापार में लगे हैं। वह भी इसी प्रकार का खोना है, जिससे अधिक वृद्धि होती है। इस प्रकार –असीमता खोने से वह चेतना, 'कर्म के क्षेत्र' में कई गुना बढ़ जाती है।

किसान स्वेच्छा से सारा अनाज मिट्टी में फेंक देता है–क्योंकि वह जानता है कि इससे वह कई गुना हो जायेगा।

अनाज कई गुना करने की युक्ति है–उसे मिट्टी में फेंक देना।

हम केवल 'विशुद्ध चेतना' प्राप्त करते हैं और सीधे बाहर आ जाते हैं।

केवल यही उपाय है–उसे स्थायी बनाने का।

खोना ही, पाने का एक उपाय है और यही, जीवन का मार्ग है –

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मरतबा चाहे,
कि दाना खाक में मिलकर, गुले गुलजार होता है।

विकास के क्रम में 'विशुद्ध चेतना' के सभी अनुभव – जो हम को हुए, वे खो जाते हैं (स्मृति से भूल जाते हैं)–परन्तु बिना 'भावातीत की युक्ति' के, जब ये अनुभव 'व्यवहार क्षेत्र' में आने के बाद, खो जाते हैं–तब वे फिर कभी नहीं आते। 'कर्म और ध्यान' का प्रशंसनीय मार्ग यही है–कि जब हम क्रियाशीलता में आते हैं, तब अपनी सत्ता (विशुद्ध चेतना) विस्मृत हो जाती है; परन्तु वह पूर्णत: विस्मृत नहीं होती। हम उसे थोड़ा थोड़ा खोते जाते हैं। परन्तु साथ ही साथ, अधिकाधिक प्राप्त करते जाते हैं–और यह प्राप्ति स्थायी होती है।

इसीलिये हम 'ध्यान के बाद क्रियाशीलता', के लिये जोर देते हैं।

सूक्ष्मदर्शिता

(1936-2009)

✍ डॉ० शम्भूनाथू

शिवम्, शान्तम्, अद्वैतम्, चतुर्थम् मन्यते आत्मा।

हमने, शास्त्रों में मिले हुए आत्मा की परिभाषा के आधार पर यह समझा कि; विचारों के किन गुणों से एक साधक को यह प्रमाण मिलता है कि उसका मन कब आत्म क्षेत्र में रहता है और; कब आत्म क्षेत्र से इन्द्रिय क्षेत्र में वापस आता है? जब मन इन्द्रिय क्षेत्र में वापस आता है–तब वह अपने 'मैं' को फिर से महसूस करता है। और जब मन आत्म क्षेत्र में चला जाता है–तब उसका अपना 'मैं' भी समाप्त हो जाता है।

ज्ञान प्राप्त करने वाला, मात्र 'मैं' होता है।

इसलिए साधक को समझना यह है कि; जिस क्षेत्र में 'मैं' की संभावना ही नहीं–उस क्षेत्र का ज्ञान, 'मैं' किस प्रकार पा सकता है? इसी प्रश्न पर चर्चा इस लेख में करेंगे।

अस्तित्व; मात्र मन और बुद्धि का होता है।

इन्द्रिय के क्षेत्र में मन और बुद्धि के योग से 'मैं' उत्पन्न होता है। आत्म क्षेत्र; बुद्धि से परे है। अत: आत्म क्षेत्र में विचरण करने के लिए मन को बुद्धि से अलग होना

ही पड़ता है। अलग होते ही मन उस क्षेत्र में चला जाता है–जिस क्षेत्र में उसकी गति पर कोई बन्धन सम्भव नहीं होता।

उस क्षेत्र में आत्मतत्व की कमी नहीं है।

आत्मतत्व के क्षेत्र में विचरण करने के पश्चात् मन; इन्द्रिय क्षेत्र में जब वापस आता है–तब उसके साथ बिल्कुल ऐसा ही होता है–जैसा शरीर जब पानी में स्नान करके वापस पानी के बाहर आता है। जब शरीर पानी में स्नान करता है–तब कुछ पानी शरीर के छिद्रों से अन्दर चला जाता है और कुछ पानी शरीर पर रहता है। जब तक पानी रहता है; कहा जाता है कि वह भीगा है। वह सूख गया; इसका अर्थ केवल इतना है कि जो पानी शरीर पर था और शरीर में पिरो नहीं पाया था–वह पानी बाह्य जगत की वायु ने ले लिया। बिल्कुल इसी प्रकार से–

जब मन आत्मतत्व में स्नान करके इन्द्रिय जगत में वापस आता है–तब कुछ आत्मतत्व, मन में पिरो जाता है और कुछ मन पर रहता है। जो आत्मतत्व, मन पर रहता है–वह इन्द्रिय क्षेत्र को प्राप्त हो जाता है।

प्रयासहीनता के बढ़ते हुए अभ्यास के साथ; हर मनुष्य का मन आत्मतत्व को करोड़ों बार पिरोता है। इस प्रकार से मन में आत्मतत्व बार बार पिरोने से आत्मसुख (Bliss) उभरने लगता है। इसके साथ साथ आत्मतत्व पिरोकर भी इन्द्रिय सुख (Pleasure) के जगत में ही मन आता है–जिससे धीरे धीरे हर मन में आत्मसुख और इन्द्रिय सुख के घोल का आभास उत्पन्न होने लगता है। अभ्यास (Meditation) बढ़ने के साथ साथ इस घोल में आत्मसुख का इकट्ठापन बढ़ता ही चला जाता है। अब यह समझना आसान होगा कि मन की अवस्था, प्रयासहीनता के अभ्यास के साथ कैसे बदलती चली जाती है? धीरे धीरे बदलते हुए मन के आत्मसुख (Bliss) का आभास इन्द्रियसुख (Pleasure) के आभास पर हावी होने लगता है। बदला हुआ मन, जब बुद्धि के योग से 'मैं' का रूप धारण करता है–तब 'मैं' की अवस्था भी बदल रही है। इस 'मैं' को, आत्मसुख की अनुभूति बढ़ती चली जाती है। आत्मक्षेत्र; इन्द्रियक्षेत्र से बहुत सूक्ष्म होता है। इस

सूक्ष्म क्षेत्र का दर्शन करने वाला मन, आत्मसुख (Bliss) से ओत प्रोत होता है। इस प्रकार से बदलता हुआ 'मैं'; सूक्ष्मदर्शी होने लगता है।

सूक्ष्मदर्शी होने के साथ साथ; सूक्ष्मजगत का ज्ञान, 'मैं' में उभरने लगता है और अहंकार नष्ट होने लगता है।

उदाहरण– जब हम पानी में चीनी को घोलते हैं– तो पानी में चीनी का गुण उभर आता है। चाशनी बनाने के लिए पानी की मात्रा नहीं बढ़ाते, केवल चीनी की मात्रा बढ़ाते हैं। ज्यादा से ज्यादा गाढ़ी चाशनी का अर्थ; केवल इतना है कि कम से कम पानी में, ज्याद से ज्यादा चीनी घुल गई। इस चाशनी का प्रयोग केवल चीनी के मिठास की अवस्था का ज्ञान करने के लिए हो सकता है। यह कोई दूसरा ज्ञान नहीं दे सकता। बिल्कुल इसी प्रकार से–

इन्द्रिय क्षेत्र के गुणों में ज्यादा से ज्यादा आत्म क्षेत्र के गुणों को घोल कर, मन में पिरो देने के पश्चात् इस मन द्वारा उत्पन्न 'मैं' धीरे धीरे, ज्यादा से ज्यादा सूक्ष्मदर्शिता का गुण अपने में उभार लेता है।

इस सूक्ष्मदर्शिता का गुण ही; मनुष्य को आत्मक्षेत्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म क्षेत्र का ज्ञान करा देता है। हम बहुत अच्छी तरह अनुभव करते हैं और कई लेखों में देख चुके हैं कि 'सूक्ष्मक्षेत्र', करने का क्षेत्र नहीं है, प्रयास का क्षेत्र नहीं है–यह मात्र; होने का क्षेत्र है। 'होने' के माध्यम से मात्र क्रियाएं होती हैं। अतः प्रमाणित हुआ कि; 'होना' तो केवल करने का इकट्ठापन है। जैसे चीनी के इकट्ठापन में केवल चीनी की मिठास का गुण है–उसी प्रकार से करने के इकट्ठापन में केवल क्रियाओं का आभास है। बुद्धि के जगत में, यह हमारी अनुभूति है कि छोटी से छोटी क्रिया के लिए, क्रिया का ज्ञान आवश्यक है। क्रिया के ज्ञान की अनुपस्थिति में, क्रिया असंभव है। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि; जिस क्षेत्र में 'होने की शक्ति' के माध्यम से क्रिया होती है – उस क्षेत्र की समस्त क्रियाओं के ज्ञान का इकट्ठापन, उसी क्षेत्र में है। ज्यों ज्यों 'सूक्ष्मता' बढ़ती है–त्यों त्यों क्रियाओं का इकट्ठापन और क्रियाओं के ज्ञान का इकट्ठापन बढ़ता है।

अतः एक साधारण तर्क के आधार पर समझा जा सकता है कि;

'सूक्ष्मतम क्षेत्र' में 'समस्त विश्व ब्रह्माण्ड' की क्रियाओं के होने के ज्ञान का इकट्ठापन अवश्य होगा।

खोज का सिद्धान्त यह है कि; हम जो जानते हैं-उसके आधार पर ही, नयी चीजों की खोज करते हैं। जैसी खोज होती है-वैसे उदाहरण, जानने की दुनियां में अवश्य मिल जाते हैं। इसीलिए हम जानने की दुनियां में भी एक क्षेत्र देखते हैं-जहां पर एक विशेष प्रकार की क्रियाओं का होना और क्रियाओं के होने के ज्ञान का इकट्ठापन-एक साधारण से साधारण मनुष्य, महसूस कर सकता है।

इन्द्रिय जगत में पृथ्वी दो प्रकार की होती है। उपजाऊ ओर बंजर।

बंजर पृथ्वी को भी खाद पानी देकर, हम उपजाऊ बना देते हैं। उपजाऊ जमीन को यदि बीज मिल जाय-तो बीज और पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति के योग में, एक विशेष क्रियाओं के होने का इकट्ठापन, साधारण मनुष्य को भी महसूस हो सकता है। इन क्रियाओं के इकट्ठापन में बीज में से, पूरे पेड़ को निकालने की शक्ति है। पेड़ निकलने की क्रियाएं होती हैं - क्रियाएं; की नहीं जातीं। क्रियाओं का होना-इस बात का प्रमाण है कि क्रियाओं के ज्ञान का इकट्ठापन भी है।

भौतिक दृष्टि से भी हम अनुमान कर सकते हैं कि

एक बीज में पूरे पेड़ का इकट्ठापन है।

बिल्कुल इसी प्रकार से कहीं न कहीं पर, पूरे विश्व ब्रह्माण्ड का इकट्ठापन अवश्य है।

यही विश्व ब्रह्माण्ड का बीज है और इसी को 'ब्रह्म' कहते हैं।

यही सूक्ष्मतम है। यदि एक मनुष्य के जीवन की ओर अपना ध्यान ले जाएं-तो उसके जीवन में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव ही; सबसे स्थूल क्रियाएं हैं। कर्मेन्द्रियों द्वारा क्रियाएं, स्थूल क्रियाएं हैं। हमारे विचारों का क्षेत्र, ज्ञानेन्द्रियों से परे है। विचारों का क्षेत्र भी दो भागों में बंटा है। जिस क्षेत्र के विचार, बुद्धि द्वारा नियंत्रित होते हैं-वह विचारों का स्थूल क्षेत्र है। यद्यपि क्रियाओं से सूक्ष्म क्षेत्र भी हैं; लेकिन एक ऐसा भी क्षेत्र अनुभव में आता है-जिस क्षेत्र के विचारों को नियंत्रित करने की शक्ति; बुद्धि में भी नहीं है। यह क्षेत्र; बुद्धि के अन्तर्गत उठने वाले क्षेत्र से भी सूक्ष्म

है। सूक्ष्मतम् तो वह है-जो सारे विचारों से परे है, अर्थात् भावातीत (Transcendental) है। वही पूरे विश्व ब्रह्माण्ड का बीज है। इन्द्रिय जगत में हमने देखा कि पूरे पेड़ का इकट्ठापन, बीज है। लेकिन बीज में से पेड़ को निकालने की शक्ति तो उपजाऊ जमीन और बीज के योग में है।

इसी प्रकार से हर मनुष्य का मन, ब्रह्मलोक की जमीन है।

मन की इच्छाएं, पृथ्वी रूपी मन के बीज हैं।

इन बीजों में ही, इच्छापूर्ति सम्बन्धित क्रियाएं पिरोई रहती हैं।

ज्यों ज्यों साधना द्वारा मन में परासुख पिरोता है-मन उपजाऊ होने लगता है, और उपजाऊ मन में ही; इच्छाएं होने के कारण-मन की उपजाऊ शक्ति और बीजरूपी इच्छाओं का योग हो जाता है। इस योग में होने के स्तर पर, उन क्रियाओं का ज्ञान है-जिन क्रियाओं के माध्यम से, वे परिस्थितियां बन सकें-जो साधक की इच्छाओं की पूर्ति कर सकें। इस तरह से हम देखते हैं कि साधना में अग्रसर होने के साथ साथ मनुष्य किसी स्तर की इच्छाओं को पूरी करने की शक्ति प्राप्त कर सकता है; यद्यपि, जैसे पेड़ में फल केवल, समय पर लगते हैं-इच्छाओं की पूर्ति केवल, समय आने पर ही होती है। तत्काल तो केवल, उनकी इच्छाएं पूरी होती है-जो ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

हम अच्छी तरह जानते हैं कि विश्व ब्रह्माण्ड की समस्त अनुभूतियां, मात्र मन की होनी हैं। समस्त क्रियाओं का ज्ञान; मात्र 'मैं' का होना है। मन के विचरण का सूचक, मन में उठते हुए विचार हैं। दूसरे शबदों में विचार; मन द्वारा होने वाले कर्म हैं। हम यह भी ऊपर देख चुके हैं कि क्रियाओं का और क्रियाओं के ज्ञान का इकट्ठापन; मात्र सूक्ष्म क्षेत्र में है। हम यह भी देख चुके हैं कि मनुष्य का मन, चार क्षेत्रों में विचरण करता है :-

(1) इन्द्रिय जगत की क्रियाओं और अनुभूतियों का क्षेत्र।

(2) बुद्धि के अन्तर्गत उठते हुए विचारों का क्षेत्र।

(3) बुद्धि से परे क्षेत्र में उठते हुए विचारों का क्षेत्र और

(4) भावातीत क्षेत्र (Transcendetal Field)।

हम यह भी देख चुके हैं कि ज्ञान, केवल 'मैं' को मिलता है।

ज्ञान पाने वाला 'मैं'; यदि मात्र इन्द्रिय जगत की क्रियाओं और अनुभूतियों के क्षेत्र में रहेगा-तो करने की दुनियां के दलदल में धंस जायेगा। इस क्षेत्र में करने की थकावट के दु:ख से छुटकारा पाना; असंभव हो जाएगा। थकावट; इस सृष्टि का सबसे बड़ा दु:खदायी अस्तित्व है और मन, बुद्धि और शरीर में इस की अनन्त पर्तों के इकट्ठा हो जाने का सामर्थ्य है। मात्र इसकी पर्तों के इकट्ठा होने के आधार पर ही; जीवन के अलग अलग दु:ख हैं। अत: क्रियाओं के दलदल में धंसने वाला व्यक्ति, चाहे जितने ही जन्म ले ले-इस दलदल से बाहर नहीं निकल पाता। इस दलदल से बाहर निकलने का केवल एक ही रास्ता है और वह है कि; वह अपने अन्दर क्रियाओं के इकट्ठेपन के क्षेत्र में, क्रियाओं के ज्ञान के इकट्ठेपन (अर्थात् होने की शक्ति के ज्ञान) को प्राप्त कर ले।

उसे सूक्ष्मदर्शी होने की विद्या की ओर अग्रसर होना पड़ेगा।

दूसरे शब्दों में उसे सूक्ष्म जगत की शक्ति प्राप्त करनी पड़ेगी। इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए, मन को सूक्ष्म जगत में विचरण कराने का अभ्यास (Meditation) करना होगा। हम पहले ही देख चुके हैं कि सूक्ष्म जगत, बुद्धि से परे का जगत है। मात्र बुद्धि के माध्यम से, प्रयासपूर्ण कर्म करने की संभावनाएं हैं। अत: सूक्ष्म जगत में मन के विचरण का अभ्यास करने के लिए, मनुष्य को नित्य कुछ समय प्रयासहीन कर्मों (Meditation) के लिए निकालना अत्यन्त आवश्यक है। ये कर्म नित्य हैं। अत: यदि, ये अनित्य हो गये-तो जीवन का चलना ही संभव नहीं होगा; यह स्वयं प्रकृति जानती है।

मनुष्य द्वारा कर्म का आधार, हमेशा उसका ज्ञान होगा।

जैसा ज्ञान; वैसा कर्म - अर्थात् जैसा ज्ञान होगा; मात्र उसी के आधार पर मनुष्य अपने कर्मों का क्षेत्र चुनेगा। यदि हम आज के युग के मनुष्यों की ओर अपना ध्यान ले जायें-तो हम देखते हैं कि मुश्किल से ही ऐसे लोग मिलते हैं, जो पराक्षेत्र को कर्म क्षेत्र-अर्थात् मन के विचरण का क्षेत्र चुनते हैं और ऐसे क्षेत्रों में कर्म के लिए समय निकालते हैं। हम यह भी देख चुके हैं कि प्रकृति में समस्त विश्व

ब्रह्माण्ड की क्रियाओं और क्रियाओं के ज्ञान का क्षेत्र, भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) है। यह क्षेत्र, सूक्ष्मतम है। इस क्षेत्र की शक्ति-सबसे सूक्ष्मदर्शी होने के कारण; त्रिकालदर्शी है।

यहीं से प्रकृति के सारे नियम निकले; निकाले नहीं गये।

अत: प्रकृति में एक ऐसा भी नियम बना-जो सूक्ष्म क्षेत्र के कर्मों को अनित्य, होने ही न दे। यदि स्थूल क्षेत्र में रहने वाला अज्ञानी 'मैं'; अपनी स्वतन्त्र इच्छा से सूक्ष्म क्षेत्र में विचरण (Meditation) के लिए समय न निकाले; तो भी प्रकृति के नियमानुसार ऐसे अज्ञानी व्यक्ति थक करके, घोर निद्रा की ओर अग्रसर हों। और निद्रा के समय, ऐसे अज्ञानियों की बुद्धि का नियंत्रण, मन से हट जाय। कम से कम अचेत अवस्था में मन, सूक्ष्म क्षेत्र में प्रकृति की शक्ति के आधार पर विचरण करे। इस तरह से प्रकृति इन कर्मों को नित्य बनाये रखे।

आत्म दर्शन

शिवम्, शान्तम्, अद्वैतम्, चतुर्थम् मन्यते आत्मा।

इस श्लोक के आधार पर आत्म क्षेत्र को परिभाषित करने में दिखाया गया, कि

> **आत्मक्षेत्र में मन के विचरण के अभ्यास से साधक में सूक्ष्मदर्शिता उत्पन्न होने लगती है और यह उत्पन्न सूक्ष्मदर्शिता ही, सूक्ष्म क्षेत्र के ज्ञान का आधार है।**

स्वयं लेखक ने लगभग 23 वर्ष ऐसा अभ्यास किया। अपनी सूक्ष्मदर्शिता के आधार पर, अपने शब्दों में आत्मा और आत्मक्षेत्र सम्बन्धित ज्ञान को लेखक, इस अंक में व्यक्त करने का प्रयास करेगा।

सभी को यह अनुभव है कि विचारों का क्षेत्र, इन्द्रियों से परे है और दो भागों में विभाजित हो जाता है-एक भाग में उठने वाले विचार, हमेशा बुद्धि के नियंत्रण में रहते हैं; लेकिन दूसरे भाग में उठने वाले विचार, बुद्धि के नियन्त्रण में नहीं रहते।

सूक्ष्मदर्शिता की कमी में, एक साधारण मनुष्य का यह अनुभव, उसे विचारों के क्षेत्र का सही ज्ञान नहीं देता। समाज के अधिकतर लोग अनियंत्रित क्षेत्र में मन के

विचरण को, मनुष्य की कमजोरी मानते रहे हैं। जैसा साधकगण पहले ही देख चुके हैं कि –

मात्र सूक्ष्म से ही स्थूल निकलता है। अर्थात् स्थूल जगत की सारी शक्तियों का इकट्ठापन; सूक्ष्म जगत की शक्ति होती है।

बहुत अच्छी तरह समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं।

पेड़ के एक बीज में ही पूरा पेड़ रहता है। जमीन की उपजाऊ शक्ति और बीज; शक्ति और बीज के योग से एक तीसरी शक्ति उत्पन्न होती है–जिसमें उन सारी क्रियाओं के ज्ञान का इकट्ठापन है–जिन क्रियाओं के माध्यम से बीज में से पूरे पेड़ को निकाला जा सकता है। पूर्ण ज्ञान का इकट्ठापन होने के कारण; क्रियाएं होने लगती हैं – की; नहीं जातीं। यह ज्ञान ही पेड़ जगत की सर्वोच्च शक्ति है और सूक्ष्मतर स्तर पर है। इसी प्रकार से सत्य यह है कि –

बुद्धि के अन्तर्गत उठने वाले विचारों के क्षेत्र से ज्यादा सूक्ष्म वह क्षेत्र है–जिसमें बुद्धि का नियन्त्रण, मन पर नहीं होता।

अत: यह क्षेत्र; तो दिव्य शक्तियों का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में समस्त स्थूल क्षेत्र की शक्तियों का इकट्ठापन है। इस क्षेत्र में मन का विचरण; ऐसे ही होता है–जैसे मनुष्य का शरीर–नहाने के लिए नदी में या समुद्र में डुबकी लगाता है। पृथ्वी पर मनुष्य हमेशा हवा के समुद्र में ही रहता है; बिल्कुल इसी प्रकार से अनियन्त्रित विचारों के क्षेत्र में मन का विचरण; समस्त शक्तियों के समुद्र में डुबकी लगाने के समान होता है। पृथ्वी पर हवा के समुद्र में रहने के कारण; हवा का सेवन अपने आप हो जाता है। मात्र नदी या समुद्र में डुबकी लगाने से, मनुष्य के शरीर में कुछ पानी चला जाता है और ऊपरी शरीर भी पानी से भीग जाता है। बिल्कुल इसी प्रकार से–

दिव्य शक्तियों के क्षेत्र में; मात्र मन के विचरण से, मन में दिव्य जगत की सबसे बड़ी शक्ति, परासुख (Bliss) उभरने लगता है और परासुख–मन, बुद्धि और शरीर के पतन को समय बीतने के साथ साथ रोकता है और उनका उत्थान करता है।

विचारों के क्षेत्र में नियन्त्रित क्षेत्र से अनियन्त्रित क्षेत्र में मन का जाना, मन का फिसल जाना है। पृथ्वी पर मनुष्य जब चलता है–तब उसका हर अंग नियन्त्रण में रहता है। लेकिन यदि किसी कारण से पैर फिसल जाता है–तो कोई भी अंग नियन्त्रण में नहीं रहता और; फिसलकर उसका पैर जितनी दूरी तक जाता है–वहां से उसे अपने पैर को उठने के लिए सिकोड़ना पड़ता है। बिल्कुल इसी प्रकार से जब मन, विचारों की दुनियां में फिसलता है–तब ज्यादा से ज्यादा दूर तक चला जाता है। कहने का अर्थ यह है कि वह भावों के क्षेत्र को ही छोड़ देता है।

यही वह क्षण है–जब वह भावातीत हो जाता है। कुछ भी अनुभव करने के लिए, भाव का अनुभव होना आवश्यक है। कहने का अर्थ यह है कि जीवन के सारे अनुभवों की संभावना, मात्र 'भावों के क्षेत्र' में ही है। अत: जिस क्षण, वह भावातीत होता है– उस क्षण वह अनुभव के क्षेत्र को ही छोड़ देता है। इसीलिए ऐसा कोई व्यक्ति, हो ही नहीं सकता–जो नित्य कई बार यह अनुभव न करे कि मन; पता नहीं कब–कहां से कहां चला गया ? मात्र सूक्ष्मदर्शिता की कमी में, वह यह नहीं समझ पा रहा है कि; वह कहां चला जाता है ?

जब मन को कुछ पता नहीं रहता–उस समय वह निर्गुण निराकार भावों से परे, सारे अनुभवों से परे, आत्मक्षेत्र– या यह कहें कि वह आत्म तत्व के समुद्र में नहाने चला जाता है।

आत्मा क्या है? और कहां है? आत्मक्षेत्र, सृष्टि का सबसे सूक्ष्म क्षेत्र है। लेकिन जिस क्षेत्र में मन भी नहीं जा सकता–उस क्षेत्र का तो अस्तित्व ही नहीं है। पूरे 'विश्व ब्रह्माण्ड' की परिभाषा तो मात्र इतनी होगी कि मन के विचरण के सम्पूर्ण क्षेत्र को विश्व ब्रह्माण्ड कहते हैं। यह 'विश्व ब्रह्माण्ड', सूक्ष्म और स्थूल पर्तों में बंटा हुआ है। 'विश्व ब्रह्माण्ड' के स्थूल क्षेत्र की शक्तियों और क्रियाओं के ज्ञान का इकट्ठापन; सूक्ष्मतम क्षेत्र में है।

यही आत्मा है।

'विश्व ब्रह्माण्ड' के अनन्त स्थूल लोक; जैसे–चन्द्रलोक, सूर्यलोक, पृथ्वी लोक और अनन्त तारागण द्वारा दर्शाए गए लोकों का आधार, ब्रह्मलोक है।

इस ब्रह्मलोक से सृष्टि की हर चीज जुड़ी हुई है। इस ब्रह्मलोक को परालोक के रूप में, कोई भी मनुष्य महसूस कर सकता है। लेकिन मात्र सूक्ष्मदर्शी व्यक्तियों को, परालोक का ज्ञान भी हो सकता है। लेखक केवल इतना कहना चाहता है कि; ऐसा कोई व्यक्ति, हो ही नहीं सकता-जिसे परालोक, हर क्षण महसूस नहीं हो रहा है। मात्र सूक्ष्मदर्शिता की कमी के कारण-उसे यह लोक समस्त शक्तियों का समुद्र, प्रतीत नहीं हो रहा है। और यही माया है-जिस माया (Illusion) के दलदल में कलियुग के ज्यादा से ज्यादा लोग धंसे हुए हैं - और यही उनके जीवन के छोटे से छोटे दुख का कारण है।

उपरोक्त आत्मक्षेत्र, ब्रह्मलोक का आकाश है।

ब्रह्मलोक का पूरा आकाश-सूर्य की तरह है। पृथ्वी पर आकाश में सूर्य है। लेकिन ब्रह्मलोक का पूरा आकाश ही सूर्य है। यही कारण है कि सूर्य, पृथ्वी के सारे भाग को एक साथ प्रकाशित नहीं कर सकता। लेकिन जितने भाग को एक साथ प्रकाशित कर देता है-वह सूर्य का क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में सूर्य का प्रकाश और गर्मी को मनुष्य अनुभव करता है। यह प्रकाश और गर्मी, सूर्य तत्व द्वारा निर्मित होते हैं। बिल्कुल इसी प्रकार से, आत्मा का बदलने वाले जगत में भी एक क्षेत्र है- अर्थात् जहां तक मन; जीवात्मा के प्रभाव को महसूस कर सके; वहीं तक जीवात्मा का क्षेत्र माना जाता है।

आत्मक्षेत्र का प्रभाव-मन के फिसलन के गुण के साथ, महसूस होता है। लेखक यह कहना चाहता है कि; जहां से मन में उठते हुए विचार-बुद्धि के नियंत्रण से मुक्त होते हैं-वहीं से जीवात्मा का क्षेत्र शुरू होता है और यह फैलाव, भावातीत तक होता है।

यह आत्मक्षेत्र ही पराक्षेत्र है।

जैसे सूर्य के क्षेत्र में ही सूर्य की शक्ति और सूर्य का प्रकाश विद्यमान रहता है- बिल्कुल उसी प्रकार से आत्मक्षेत्र में आत्मा की शक्ति का घनत्व, बहुत अधिक होता है।

यह शक्ति जहां पर भी है-वहां पर मन में उठते हुए विचारों का नियन्त्रण असम्भव है।

ऊपर हमने देखा कि आत्मक्षेत्र दो हैं : एक निर्गुण निराकार क्षेत्र में और; दूसरा बदलने वाले क्षेत्र में। पहले क्षेत्र को आत्मक्षेत्र कहते हैं और दूसरे को पराक्षेत्र कहते हैं। पराक्षेत्र को हर मनुष्य अनुभव तो करता है-लेकिन सूक्ष्मदर्शिता की कमी में वह इस क्षेत्र में मन के विचरण को अपनी कमजोरी मानता है। हर व्यक्ति को एक 'क्षण' अनुभव होता है-जब उसे पता, लग ही नहीं सकता कि कब वह बुद्धि के नियन्त्रण से मुक्त हो गया; उसके पश्चात् वह अनियन्त्रित क्षेत्र के विचारों को भी अनुभव करता है। यही पराक्षेत्र का अनुभव है। आत्मक्षेत्र से पराक्षेत्र में विचरण के पश्चात्, जब वह बुद्धि के नियंत्रण के क्षेत्र में आता है- मात्र तब आत्मक्षेत्र और पराक्षेत्र का अनुभव करता है। कारण यह है कि यह अनुभव करने वाला, तो उसका 'मैं' है। साधक पहले ही देख चुके हैं कि 'मैं'; मन और बुद्धि के योग से उत्पन्न होता है।

पराजगत, बुद्धि से परे है।

जब मन पराजगत में विचरण करता है-तब मन और बुद्धि अलग हो जाते हैं।

मन; अपने पर इन्द्रिय जगत के पड़े हुए छापों को लेकर भावातीत क्षेत्र और फिर पराजगत में विचरण करता है-जिससे उसके ज्यादा से ज्यादा छाप मिट सकें।

मन पर पड़े हुए ये छाप ही; उसे माया के दलदल में फंसाते हैं। अतः माया के दलदल से निकलने के लिए उसे लाखों या करोड़ों बार भावातीत होना पड़ता है। इस तरह से हम आसानी से समझ सकते हैं कि; ध्यान के नित्य अभ्यास (Meditation) द्वारा हमारे मन की अवस्था कैसे बदलती है?

'मैं', हमेशा मन और बुद्धि के योग से उत्पन्न होता है।

भावातीत और पराजगत में मन के विचरण द्वारा मन, अपने में बार बार आत्मतत्व को पिरोता है-जिससे इन्द्रिय जगत में विचरण के समय मन पर पड़े हुए ज्यादा से ज्यादा छाप, मिट सकें। क्योंकि ये छाप 'पराजगत के सूर्य' के लिए बादल का काम करते हैं और इसीलिए मन में परासुख (Bliss) उभर नहीं पाता। ज्यों ज्यों

छाप मिटते हैं–परासुख उभरता है। इस तरह मन की अवस्था बदलती है और; इस तरह से मन का उत्थान होता है। जब उत्थान के बाद मन, बुद्धि के सम्पर्क में आता है–तब मन में उभरा हुआ परासुख, बुद्धि पर पड़े हुए छाप को भी मिटाता है।

बुद्धि पर पड़े हुए छाप ही, माया में फंसे हुए मनुष्यों की तरह तरह की चिन्ताएं हैं और मन पर पड़े हुए छाप, उसके अन्दर समाए हुए डर हैं।

इस तरह से यह स्पष्ट हो जाता है कि डर और चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए – मन को भावातीत क्षेत्र में बार बार स्नान करना ही होगा। फिर पराक्षेत्र में विचरण करना ही होगा। धीरे धीरे इस अभ्यास से हमारे मन का उत्थान होगा–अर्थात् मन में समाए हुए डर कम होने लगेंगे।

डर का कारण, हमेशा शक्तिहीनता है।

इसलिए डर के कम होने के साथ–वह अपने मन में 'उभरती हुई ईश्वरीय शक्ति' को महसूस कर सकता है।

मन में समाए डर का, चिन्ताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इसलिए डर कम होने लगे और चिन्ता कम न हो–यह तो सम्भव ही नहीं है। इस तरह से अब हम यह देखेंगे कि; साधना के समय हम अपने 'मैं' के अहंकार में बदलाव को किस प्रकार से अनुभव कर सकते हैं ? 'मैं' को अहंकार रहित बनाने के लिए – सत्युग में वैदिक शिक्षा, समाज में थी। इस शिक्षा के आधार पर, बच्चे बचपन में ही अपने गुरुओं के साथ पराजगत और भावातीत क्षेत्र में मन को विचरण कराने में सिद्ध होने हेतु–लगभग 25 वर्ष की आयु तक माता पिता का घर छोड़कर, गुरुओं के साथ रहते थे।

आत्मक्षेत्र; आत्म तत्व का समुद्र है।

आत्मतत्व में सत्–चित्–आनन्द के गुण का इकट्ठापन है। जब आत्मतत्व; मन में पिरोता है–तो चित् उभरता है। अर्थात् चेतना उभरती है। उभरी हुई चेतना को वह अनुभव, केवल तब कर सकता है–जब मन और बुद्धि का योग होता है। अर्थात् हमारा 'मैं', हमें अनुभव होता है। इन्द्रिय क्षेत्र की चेतना स्थूल होती है।

इस स्थूल चेतना में ही; वह अहंकार होता है–जो मनुष्य को दुख पहुंचा सकता है। ध्यान के समय, मन एक चक्र में घूमता है। यह बुद्धि के नियंत्रित क्षेत्र से भावातीत क्षेत्र में जाता है। फिर पराजगत में वापस आता है–अर्थात् अनियन्त्रित विचारों में रहता है। इसके पश्चात् वह अपने 'मैं' के क्षेत्र में आ जाता है। अपने 'मैं' के क्षेत्र में वह, कुछ 'सूक्ष्मदर्शी' होकर आता है। इस 'सूक्ष्मदर्शिता' का अनुभव ऐसे होता है कि; वह अनुभव करता है कि उसके अंदर के विचार अधिकतर सूक्ष्म क्षेत्र के विचार हैं। साधक को शांत क्षेत्र और सूक्ष्म क्षेत्र के विचारों का अनुभव तो तब होता है–जब विचार, बुद्धि के नियंत्रण में हैं। इसलिए लेखक कह रहा है कि धीरे धीरे साधना के समय मन, अपनी 'सूक्ष्मदर्शिता' को अनुभव करेगा। नए साधक के लिए यह अनुभव बहुत कठिन होगा। लेकिन वर्षों से साधना करने वाले साधक का 'मैं', परासुख भी अनुभव करेगा। मनुष्य, अपने 'मैं' को भी बदलता हुआ देख सकता है। यदि वह साधक है–तब उसे यह भी अनुभव होगा कि यह बदलाव तो साधना के बाद आया। कहने का अर्थ यह है कि; मन को दिव्य क्षेत्र में विचरण कराने वाली साधना से आया। साधना करने से पहले उसे अवश्य विश्वास था कि; वह जीवन के सारे सुख अपनी बुद्धि और कठिन परिश्रम द्वारा पायेगा। यही उसका अहंकार था।

धीरे धीरे उसका अहंकार टूटता है और अहंकार रहित 'मैं' का जन्म होता है। समाज के ज्यादातर लोग समझते हैं कि हमारा 'मैं' ही हमारा अहंकार है। लेकिन लेखक इस लेख द्वारा समझाना चाहता है कि स्वयं 'मैं' दो प्रकार का होता है। इन्द्रिय जगत और बुद्धि के क्षेत्र में विचरण करने वाले व्यक्तियों को यह गलतफहमी हो जाती है कि; जीवन में मनुष्य सब कुछ अपनी बुद्धि और कड़ी मेहनत से प्राप्त कर सकता है। किसी न किसी अंश में, मनुष्य को यह गलतफहमी अवश्य रहती है।

सत्य यह है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड एक प्रकार का 'सुख का समुद्र' है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में सारे जीव, नाव की तरह होते हैं। अर्थात् जीव को मात्र अखण्ड सुख मिल जाने पर, वह सुखसागर से पार हो जाएगा। पूर्ण सुख तो सबको चाहिए। सुख, मात्र वह है–जो मन को प्रसन्न कर सके–या यह कहें कि, सन्तुष्ट कर सके।

अहंकार के अंधेरे के कारण मनुष्य अपनी बुद्धि की मदद से इन्द्रिय सुख का साधन प्राप्त करके, इस सुख सागर से पार होना चाहता है।

साधना द्वारा ज्यों ज्यों मन और बुद्धि में बदलाव आता है-इन्द्रिय जगत का 'मैं' 'पराजगत का ज्ञान' पाकर पराजगत के सुख का भोग करने लगता है।

इस परिवर्तन के साथ साथ वह धीरे धीरे राम और कृष्ण के 'मैं' की ओर बढ़ने लगता है। दूसरे शब्दों में अहंकाररहित 'मैं' की ओर बढ़ने लगता है।

परासुख; मन को मात्र सूक्ष्म क्षेत्र में ले जाने का प्रयास करता है। धीरे धीरे अभ्यास से इस आन्तरिक खिंचाव में बाधा की महसूसियत कम होगी और; मनुष्य साधना के समय महसूस करने लगेगा कि अब वह भावातीत या अनियन्त्रित होने के पहले ही, सूक्ष्म जगत में था। यह स्पष्ट करता है कि; उच्च स्तर के साधक का 'मैं' भी सूक्ष्म जगत में विचरण करने लगता है-जब कि छोटे स्तर के साधक का मन, मात्र स्थूल जगत में विचरण करता है।

ज्यों ज्यों 'मैं' सूक्ष्म जगत में विचरण करने का अभ्यास करने लगता है- 'मैं' अहंकार रहित होने लगता है। जिस अनुपात में वह अहंकार रहित हो जाता है-मात्र उसी अनुपात में, उसके जीवन में 'होनी' बढ़ती है और 'करनी' कम होने लगती है। मनुष्य तो केवल उतना ही करता है-जितना वह होने को देख नहीं पा रहा है। यही इस बात को स्पष्ट करता है कि; आज किसी साधक की चाहे जो अवस्था हो-लेकिन कभी न कभी तो वह अवस्था अवश्य आएगी-जब कुछ पाने के लिए करने की बात नहीं होगी; यद्यपि अपने स्वभाव से कुछ देखने सुनने की दुनिया में-अर्थात् इन्द्रिय जगत में तो वह आता ही रहेगा। इसी अवस्था को कहते हैं कि; अब साधक की सारी क्रियाओं में ईश्वर दिखायी पड़ रहा है? उसका मन उस सूक्ष्म क्षेत्र में रहने लगा-अर्थात् उसका 'मैं' इस सूक्ष्म क्षेत्र में रहने लगा कि; उसे अपने चारों तरफ की क्रियाएं दिव्यजगत की शक्तियों द्वारा की जा रही हैं-यह अनुभव होने लगा।

ऊपर हम लोगों ने देखा कि नए साधक भी शिक्षक के बताने पर, मन में

नियन्त्रित क्षेत्र और फिसलन के क्षेत्र को अलग अलग अनुभव कर सकते हैं। मात्र साधना में लम्बे अभ्यास के बाद ही वो अपने 'मैं' में बदलाव अनुभव करने योग्य होता है। अत: मन में फिसलन के क्षेत्र की अनुभूति के आधार पर, साधारण से साधारण साधक भी इस बात को समझ सकता है कि कब उसका मन आत्मक्षेत्र में रहता है और; कब बुद्धि के क्षेत्र में रहता है?

साधक दो प्रकार के होंगे-

(1) एक वे जिनका मन आत्मक्षेत्र में, आत्मक्षेत्र की जागृति के साथ विचरण करेगा-उन्हें आत्मक्षेत्र की शक्ति और ज्ञान कम समय में, अधिक मिलेगा।

(2) दूसरे वे; जिनका मन-बिना आत्मक्षेत्र की जागृति के आत्मक्षेत्र में विचरण करेगा। उन्हें लम्बे अभ्यास के बाद भी लाभ कम होगा।

कुछ दिनों के अभ्यास के बाद; ज्यों ज्यों साधक में अपने 'मैं' के उत्थान की जागृति होगी - त्यों त्यों आत्म जागृति के साथ साथ साधना आसान होने लगेगी। केवल ऐसे साधक, ध्यान के समय मन की गहरी शान्त अवस्था-अद्वैत की ओर अग्रसर होने का अनुभव और चतुर्थ चेतना का अनुभव करने योग्य होंगे। इस तरह से हम देखते हैं कि शास्त्रों में मिले हुए श्लोक-

'शिवम् शान्तम् अद्वैतम् चतुर्थम् मन्यते आत्मा'

के आधार पर आत्मक्षेत्र को पहचानने की विधि-जो साधकों को बतायी; उस विधि के आधार पर उच्च स्तर के साधकों के लिए आत्मक्षेत्र की जागृति उत्पन्न करना तो सम्भव होगा, लेकिन इस अंक में बतायी गई आत्मक्षेत्र की परिभाषा के आधार पर नए से नया साधक भी आत्म जागृति के साथ साथ साधना करने में सफल हो जायेगा। उच्च स्तर का साधक, बढ़ती हुई साधना की शान्त अवस्था के साथ साथ सूक्ष्म क्षेत्र में प्रवेश करनेकी अनुभूति में भी बदलाव अनुभव करेगा। यह अनुभूति, उसके 'मैं' की होगी और उसके आधार पर वह आसानी से समझ लेगा कि उसका 'मैं' धीरे धीरे आत्मा के और नजदीक पहुंच कर - भावातीत होने के योग्य हो रहा है। जो, जितने समीप होकर भावातीत होगा-उसे उतना ही स्पष्ट आत्म दर्शन होगा। ❑

जो चाहिए पाईए; धन्यवाद का गुण अपनाईए

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (मो० 09991846415)

जीवन को सार्थक करना है-तो धन्यवाद की आदत डालो।

दुनिया का काम, कोई हमारा कर देता है-तो उसका धन्यवाद- हम एक नहीं, दो बार कर देते हैं-वो भी एक छोटे मोटे काम के लिए। परन्तु ईश्वर - जो दिन भर और हर पल हमारे ऊपर कृपा की वर्षा कर रहा है, उसका धन्यवाद तो शायद दिन में एक बार भी नहीं करते। चलो, कोई बात नहीं -आज तक जो हो गया सो हो गया, क्योंकि गया वक्त तो आएगा नहीं। परन्तु आगे वाले समय में, हम प्रभु की कृपा का हर पल इतना धन्यवाद करें-कि वह हमारे पहले किए गुनाह को भी भूल जाए। आने वाला समय हमारा, इतना सुखमय हो जाए-हमें यह एहसास होने लगे कि हमारा जीवन सार्थकता की ओर जा रहा है।

करना क्या है? सबसे पहले -जैसे ही दिन की शुरूआत में हमारी आंख खुले, तो प्रभु का धन्यवाद करें और थोड़ी देर के लिए अपने बिस्तर पर ही बैठ जाएं। एक बार अपने इष्ट का नाम-जो हमें अच्छा लगे, हम सुबह सुबह भगवान् को याद करेंगे- तो दिन भर भगवान् हमें याद रखेंगे। भगवान् का साथ हो जायेगा-तो शुक्रिया करना नहीं पड़ेगा, अपने आप मन से निकलता रहेगा।

कम से कम 30 मिनट तो बैठ ही जाना - फिर दिन भर काम करना। देखना; आप का वह दिन-बाकी दिनों से कितना अलग और बढ़िया होगा? रात को सोने से पहले, फिर भगवान का दिन भर की कृपा के लिए धन्यवाद करें। एक बार नाम लेकर थोड़ी देर बैठ जाना और फिर सो जाना।

दिन तो आपका बढ़िया रहा था-अब देखना रात, दिन से भी बढ़िया- क्योंकि आप भगवान् के नाम के साथ सोए। आपके मन में कहीं यह विचार भी आया होगा कि सुबह के 30 मिनट नींद के खराब हुए। इंसान अपने को बहुत व्यस्त और समझदार समझने की भूल तो करता ही है; परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि अगर आप ऐसी दिनचर्या बनाते हो-तो आपका समय बढ़ेगा।

नींद का तो कहना ही क्या? जो इतना सोकर भी पूरी नहीं होती थी-अब इससे

आप इतने Active हो जाओगे कि आपके साथी पूछेंगे कि; आज कल क्या करने लगे हो? बता देना-भगवान् का हर पल धन्यवाद और उसकी याद में सुबह शाम बैठना; आपका कल्याण तो होगा ही-आपके अगल बगल वालों का भी होगा।

देखना इस छोटे से शब्द-'धन्यवाद' की ताकत।

यह जो प्रभु का एक बार नाम लेकर 30 मिनट चुपचाप बैठना है-'जो होता है, होने देना है'; जैसे कोई भी विचार आए-उसको देखना मात्र है - उसके साथ मन, बुद्धि से जुड़ना नहीं है। थोड़ी देर में, वह विचार खत्म हो जायेगा-मन के अन्दर जो भरा पड़ा है; इसी को संस्कारों को खत्म करना या साफ होना कहते हैं।

इस तरीके का नाम ही 'ध्यान' है। 'ध्यान' - हमारा स्वभाव ही है। हम बाहर जगत का तो ध्यान कर लेते हैं, परन्तु भीतर का ध्यान - हमें किसी ने बताया नहीं, इसलिए कर नहीं पाए। अब कुछ पल बैठना-आरम्भ करेंगे तो 'विचार मुक्त अवस्था' आ जाएगी। ईश्वर का संग करने से, ईश्वर के गुण (सत्-चित्त-आनन्द), हमारे अन्दर आने आरम्भ हो जाएंगे। हमारा जीवन भी, केवल अच्छा नहीं - बहुत अच्छा हो जाएगा। सब प्यार करने लगेंगे और सबको हम प्यार करने लगेंगे। मन, कहां दुनियां से तंग आया हुआ था-अब और जीने का मन करेगा; क्योंकि जीने का ढंग आ गया। किसी ने लिखा है-

जिन्दगी में भूलकर-न पाप कर, हर घड़ी-परमात्मा को यादकर
भूल से हो जाए-कोई पाप, बैठकर कुछ पल-पश्चाताप कर
आयेगा परमात्मा-तुझको नजर, आईना-दिल का-तू पहले साफ कर
जिन्दगी में भूलकर-न पाप कर,
'ध्यान' ही सच्चा मार्ग है-उसी को साकार कर

पढ़ते ही आरम्भ करेंगे-आज से नहीं, अभी से।
अभी नहीं, तो कभी नहीं-Life is very short.

सरल ईश्वरीय ध्यान एवं समाधि

✍ डॉ० त्रिभुवन भारद्वाज (094681-57335)

सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप व 'निर्गुण निराकार' परमपिता परमात्मा को मन के

अन्दर (मन मन्दिर में) अनुभव किया जाता है। अनुभव करने के तरीके को परमात्मा का 'भावातीत ध्यान' कहते हैं। ध्यान के समय मन, अन्दर के आनन्द (Bliss) में खो जाता है, व स्वयं को भूल जाता है।

प्रेम गली अति सांकरी, जा में दोउ ना समाई।
हरि है तो मैं नहीं, मैं है तो हरि नांहि॥

'ईश्वर का ध्यान', इतना सरल व सहज है कि हर मनुष्य-इसको कर सकता है और इसे समझकर और अपनी इच्छा से बढ़ा कर 'ब्रह्म स्वरूप' बन सकता है। प्रत्येक मनुष्य नींद के समय 'जीवनीय शक्ति' अर्जित करता है और जागृत होने पर उस शक्ति द्वारा बुद्धि का उपयोग कर पाता है। जब वह नींद के समय, होनी (Being) पर समर्पित होता है - तब वह सब कुछ करने व बुद्धि के द्वारा कराने वाली ताकत पा लेता है।

नींद में हम कुछ नहीं करते-केवल आराम करते हैं।

हम स्वयं को भूल जाते हैं। नींद पूरी होने पर, जागे जागे, मन को अन्तर्मुखी (Invert) होने दें-अर्थात् होनी पर, समर्पित भाव से बैठे रहें, बुद्धि से सोचकर कोई प्रयास न करें-ऐसा करने से मन 'आनन्द स्वरूप' परमात्मा को अनुभव करने लगेगा।

'आनन्द', ईश्वर (निर्गुण-निराकार) के समीप का सुख है।

मन, सुख की भूख मिटाने के लिए-स्वभाव से ही 'निर्गुण निराकार' में प्रवेश करेगा। यह अनुभव से परे का क्षेत्र है। इसको मन का 'ध्यान समाधि' में बैठना कहते हैं। इस प्रकार की ध्यान समाधि, सभी इच्छाओं को पूरा कर देगी।

जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।

'एकै साधे सब सधै' की उक्ति भी, इसी तथ्य को उजागर करती है।

ध्यान द्वारा; माया के दलदल से मुक्ति

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

इस जीवन में केवल दो बातों का मूल्य है :-

1. **बाहर की समस्त घटनाओं की प्रतिक्रियाएं-अलग अलग मनुष्यों के मन में; या तो समाती हैं-या निकलती हैं।** क्रिया करने के समय, वे समाती हैं-या यह कहें कि जब बुद्धि क्रियाशील रहती है-तब वे, केवल समाती हैं। साधारण मनुष्यों के जीवन में इन क्रियाओं का प्रभाव, 'आराम के समय' निकलता है और जितना प्रभाव निकलने से बच जाता है-वह संस्कारों के रूप में अन्दर एकत्र हो जाता है। इसकी पर्तें, जितनी घनी होती जाती हैं-आत्मा की शक्ति, मन को उतनी ही कम मिलती है। इसके साथ साथ 'मन की जाग' (Consciousness) कम होने लगती है तथा मनुष्य, एक दूसरे की क्रियाओं के ऊपरी रूप में और एक दूसरे के मुंह से निकले हुए 'शब्दों के अर्थ से बने हुए दलदल' में धंसता चला जाता है। यही 'माया का दलदल' कहलाता है।

2. **दूसरी बात, जिसका जीवन में मूल्य है-वह है, इन संस्कारों का निकलना।** सोते समय-आराम के समय-सभी के जीवन से ये संस्कार निकलते हैं, लेकिन जिस साधक का 'ध्यान का अभ्यास' (Meditation) काफी लम्बे समय से चल रहा है (लगभग 14-15 साल तक) और धीरे धीरे नित्य के जीवन में अपने आपको अन्तर्मुखी पाने लगता है-उसके मन में समाए हुए संस्कारों की पर्तें, आराम के समय भी निकलती हैं और स्वाभाविक क्रियाओं के समय भी निकलती हैं। धीरे धीरे अस्वाभाविक क्रियाएं, प्रयास से भरी क्रियाएं और बुद्धि पर आधारित क्रियाएं-उसके सामर्थ्य से बाहर होने लगती हैं। ऐसे साधकों की ही, 'भावातीत चेतना' (Transcendental consciousness) जागृत होने लगती है और किसी के शब्दों या 'क्रियाओं में उलझना' भी उसके लिए कठिन होने लगता है। क्योंकि मनुष्य तो केवल, अपने 'अनुभव की शक्ति' के आधार पर- जिस स्तर (Status) के 'सत्य' को अनुभव करता है-उसी स्तर का उसका जीवन भी होने लगता है।

बाहर की समस्त क्रियाएं और घटनाएं मुझे, केवल जीवात्मा के उत्थान या पतन से ही सम्बन्धित दिखायी पड़ती हैं। सभी क्रियाएं, किसी-न-किसी के द्वारा ही होंगी। लेकिन कर्ता हमेशा, किसी 'व्यक्ति विशेष' का अहं ही होता है।

'ब्रह्म की शक्ति'-जो वायुमण्डल में पिरोयी हुई है-एक सत्ता है, मनुष्य नहीं है।

वह सत्ता, सारी जीवात्माओं के उत्थान की ओर लगी हुई है।

जिन्हें उत्थान का रास्ता नहीं मिला-उनके संस्कारों को भी वह सत्ता, निकलने में लगी रहती हैं-लेकिन पूर्ण रूप से निकालने में सक्षम नहीं है।

जिन्हें ध्यान का रास्ता मिल जाता है-उनकी मदद करने में 'ब्रह्म की शक्ति', पूर्ण रूप से सक्षम है।

सभी के अन्दर, संस्कार-रज और तम, दो रूप में रहते हैं। सबके अन्दर, संस्कारों का एक समुद्र है। ऊपर की सतह पर उभरे हुए संस्कार ही, 'रज के संस्कार' कहलाते हैं और नीचे की सतह पर दबे हुए 'तम के संस्कार' कहलाते हैं। वायुमण्डल में पिरोयी हुई 'ब्रह्म की शक्ति', संस्कारों के इस समुद्र को हर क्षण किसी-न-किसी क्रिया के माध्यम से मथने (मंघानी) में लगी रहती है, जिनसे 'तम के दबे हुए ज्यादा से ज्यादा संस्कार', उभर करके-ऊपर की सतह पर 'रज के संस्कार' के रूप में आ जांय। जिन व्यक्तियों को ध्यान का रास्ता नहीं मिलता, या जो 'ध्यान का अभ्यास' (Meditation) ठीक से नहीं कर पाते-उनके जीवन में भी 'ब्रह्म' उतना ही काम करता है, जितना उनके जीवन में करता है-जो 'ध्यान का अभ्यास' करते हैं। लेकिन 'ध्यान' द्वारा अपनी अवस्था (Standard) उठाने में, जो असफल रहते हैं-उनके जीवन में 'ब्रह्म', किसी क्रिया के माध्यम से उनके अन्दर के तम के कुछ संस्कारों को उभार कर, सतह पर लाने में सफल तो हो जाता है-लेकिन उनकी 'ध्यान द्वारा उत्थान' की अवस्था-न होने के कारण, 'ब्रह्म' द्वारा उभरे हुए संस्कार-rebound (वापस) होकर पुनः संस्कारों के समुद्र की तह में दब जाते हैं और; इस तरह उनका पतन-धीरे धीरे होता ही रहता है। लेकिन वे साधक-जो अपनी 'आन्तरिक चेतना को जगाने' में लगे रहते हैं-उनके जीवन में हर क्षण वायुमण्डल में पिरोयी हुई 'ब्रह्म की शक्ति' द्वारा, तम के जो संस्कार, रज के रूप में उभर आते हैं-उन्हें अपनी अवस्था के आधार पर वे साधक, बाहर निकालने में सफल हो जाते हैं-और धीरे धीरे उनका उत्थान होता ही चला जाता है।

सभी क्रियाएं, चाहे वे 'शब्द के रूप' में हों - या किसी दूसरे रूप में, केवल ऊपर बताए हुए सिद्धान्तों (Principal) के रूप में ही दिखाई देते हैं।

जीवन के उत्थान के रास्ते पर कुछ भी गलत नहीं है।

Nothing is wrong on the path of evolution.

'ब्रह्म की शक्ति' द्वारा ऐसा भी होता है-कि किसी निम्न स्तर की चेतना वाले व्यक्ति की मदद से; एक उच्च स्तर की चेतना वाले व्यक्ति की चेतना-और अधिक उच्च स्तर पर ले जाने में सक्षम हो जाती है। ऐसा केवल सत्संग में तर्क वितर्क द्वारा होता है। इसीलिए यह कहावत मशहूर हे कि -

'ब्रह्म की महमिा, अपरम्पार'

'विकसित चेतना' के विकास द्वारा, 'ब्रह्म की लीला' स्पष्ट रूप से प्रतीत हुई है -

काहू न कोउ सुख दुःख कर दाता।

निज कृत करम भोग सब भ्राता॥

'ध्यान' द्वारा-अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड शक्ति, अखण्ड आनन्द, अखण्ड ज्ञान और अखण्ड प्रेम की प्राप्ति का मेरे द्वारा प्रसारित होना ही, मेरे सत्य की अनुभूतियों का प्रसार है-

एक ही साधे-सब सधे, सब साधे - सब जाय

बहुत कुछ करने से बहुत थोड़ा मिलता है; और कुछ-न-करके, केवल आंख मूंद करके 'ध्यान' पर बैठने से-सब कुछ मिल जाता है। प्रत्येक मानव के भीतर परमात्मा की अखण्ड सत्ता विद्यमान है और वही शक्ति, ज्ञान और आनन्द की स्रोत है। एक ही सत्ता-अखण्ड शक्ति, अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड आनन्द, अखण्ड प्रेम और अखण्ड ज्ञान देगी। इस खास सत्ता से सम्पर्क करने का रास्ता, चाहे एक हो-चाहे कई हों, लेकिन वह सत्ता तो एक ही है और एक ही रहेगी। 'ध्यान द्वारा, इस सत्ता को अपने जीवन में उभारा जा सकता है।'

जैसी चेतना है-वैसा अहंकार है। बिना 'आन्तरिक चेतना' जगाए; अहंकार कम करना या मिटाना-असम्भव है। पूर्ण आन्तरिक चेतना जागने में 30-40 वर्ष भी लग सकते हैं।

अहंकार को कम करने अथवा चेतना (Consciousness) को जगाने का एकमात्र उपाय- 'ध्यान योग' अथवा 'ईश्वर के प्रति समर्पण' है।

जीवन, पांच समतलों में बंटा हुआ है। इसलिए पांच रास्तों द्वारा इन समतलों (Planes) को उठाकर, जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है। मात्र 'ध्यान के

माध्यम' से और 'खंड की शक्तियों' की मदद से, पांचों समतलों को उठाया जा सकता है। जब साधक, उच्च कोटि (Standard) का हो जाता है-तब उसके जीवन में पांचों समतलों (Stages of Life) की साधनाएं विलय (Merge) होकर, 'एक साधना का रूप' धारण कर लेती हैं। यह बिल्कुल वैसे ही होता है-जैसे सभी पांच अलग अलग नदियों का जल, समुद्र तक पहुंच कर-एक (समुद्र) हो जाता है। ❑

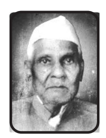

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-59 : थोड़ी शक्ति असीम की, मदद खण्ड की ले लें।
गर अखण्ड बढ़ता रहे, छंटे खण्ड के मेले॥

ब्रह्म की असीम शक्ति, यदि कम हो-तो खण्ड, अर्थात् बाहर की शक्तियों की मदद लेवें। यदि 'अखण्ड ब्रह्म की शक्ति' बढ़ती जाए-तो बाहरी शक्तियों की जरूरत ही नहीं रहेगी। सुखमय जीवन का सिद्धान्त, मात्र इतना है कि मन- ध्यान द्वारा अधिकाधिक आत्मशक्ति को आत्मसात करता जाय। इस अवधि में अखण्ड की शक्ति जितनी कम है-उस अनुपात में इच्छाओं की पूर्ति हेतु, बाह्य खण्ड शक्तियों की मदद अवश्य ले ली जानी चाहिये। जैसे-यदि अखण्ड की इतनी शक्ति नहीं उभरी है कि जो भी खायें, उसे पचा सकें-तो भोजन को तृप्तिदायक ही करना चाहिये और यदि अपच हो जाये, पेट में दर्द उठे, तो उसकी बाहरी उपाय-दवा इत्यादि से शान्त (ठीक) कर लेना चाहिये। स्पष्ट है कि 'ध्यान' के साथ साथ स्वाभाविक क्रिया का भी बड़ा महत्व है।

इस प्रकार, यदि हम आत्मशक्ति बढ़ाने की साधना करते रहेंगे-तो धीरे धीरे मन के अनुसार, क्रिया करने की क्षमता बढ़ती जायेगी। उसका प्रतिकूल या दुखद परिणाम भी नहीं होगा और स्वभावत: बाह्य खण्ड शक्तियों की मदद की आवश्यकता भी कम पड़ने लगेगी। अन्त में खण्ड शक्तियों की मदद, शून्य हो जायेगी। चेतना की इस अवस्था का नाम -'अद्वैत चेतना' है।

दोहा-60 : छोड़ें हम कुछ भी नहीं, छूटे तो अनायास।

चिन्ता उसकी ना करें, समझें ब्रह्माभास॥

खण्ड की शक्तियों को छोड़ना नहीं है। वे अनायास-अपने आप छूट जाएंगी। उनके छूटने से चिन्ता भी मत करें। इसे भगवान की महिमा मानें। 'अखण्ड की शक्ति' बढ़ने पर, वे अनायास ही छूटती जायेंगी। खण्ड की मदद छूट रही है, या नहीं-इसकी भी चिंता नहीं करना है; क्योंकि 'ब्रह्म की शक्ति' बढ़ने पर, खण्ड की शक्तियों की मदद की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। ❑

तपस्या

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

तपस्या, एक प्राकृतिक घटना है। प्रकृति के अन्दर-अलग अलग चेतनाओं का पारस्परिक सम्पर्क होना, कभी बन्द हो ही नहीं सकता। कभी कभी जब किसी एक चेतना का सम्पर्क, किसी दूसरी चेतना से होता है-तो उनमें से एक चेतना, बाहर के किसी एक पहलू में केवल निखरती ही चली जाती है और वह चोटी तक निखर जाती है। प्रकृति की ऐसी घटनाओं को, 'तपस्या' कहते हैं।

उदाहरण- सोने को जिस समय, आग में तपाया जाता है-उस समय सोना निखरने लगता है। जब सुनार यह समझता है-कि यह पूर्णरूप से निखर चुका है, पूर्णरूप से शुद्ध हो चुका है और इसमें किसी तरह का मल या मिलावट नहीं रह गयी है-तभी उसका मूल्य आंकता है।

'ध्यान के नियमित अभ्यास' से मन और 'ईश्वरीय तत्व' का सम्पर्क बढ़ता है। जीवात्मा, ईश्वरीय शक्ति का भण्डार है। ईश्वरीय शक्ति का यह भण्डार-हमारे जन्म जन्मान्तर के संस्कारों से ढका रहता है।

> **जब मन, अन्दर की दुनियां में विचरण करता है-तब बाहर की जाग (Consciousness) खत्म हो जाती है और 'अन्दर की जाग' शुरू हो जाती है।**

मन का भागना-जो कि ऊटपटांग या बुद्धि से परे विचारों के रूप में प्रतीत होता है-'संस्कारों का अनुभव' है। जब भी मन, 'संस्कारों के क्षेत्र' में विचरण करता है-मन खोया हुआ रहता है।

यह मन का खोना क्या है?

मन, सुख में लीन हो जाए-इसी को मन का खोना कहते हैं।

मन, किसी तरह के दु:ख में लीन हो ही नहीं सकता।

संस्कारों के क्षेत्र में विचरण करते समय मन, भगवान के सम्पर्क का अनुभव-उस सुख के रूप में ही करता है, जिसके सहारे वह संस्कारों के क्षेत्र में खोया रहता है। संस्कारों के क्षेत्र में मन-कुछ क्षणों के लिए खो जाए, या लम्बे समय के लिए-इन क्षणों में मन का सम्पर्क, 'भगवान की शक्ति' से होता है। इस बात को जो भी, जितनी अच्छी तरह समझ लेगा-उसके लिए उतना ही आसान हो जाएगा कि; मन और 'भगवान' के सम्पर्क वाले क्षणों को बढ़ा सके-दूसरे शब्दों में मन की 'तपस्या' कर सके। हमारा मन ही, हमारे जीवन के सुख दु:ख का आधार है। हमारा मन ही, हमारे जीवन को सहजता से सही या गलत रास्ते पर ले जाता है, अच्छाइयों या बुराइयों में लगाता है-या जीवन को तरह तरह की शक्तियों या कमजोरी की स्थितियों में ले जाता है।

मन की अवस्था ही, आधारभूत या मुख्य चीज है।

मन की अवस्था, तब ऊपर उठती है-जब जीवन में वे क्षण बढ़ते हैं, जिन क्षणों में वह 'संस्कार के क्षेत्र' में खोया रहता है। सूक्ष्म क्षेत्र के संस्कारों में 'ईश्वरीय शक्ति' अधिक होती है।

मन की तपस्या (Meditation) से मन का उत्थान होता है और जीवन का सुख बढ़ता है।

प्रशंसा तो हम, हमेशा उन्हीं की करते हैं-जो अपना जीवन संवारने के साथ साथ, दूसरों को जीवन संवारते हैं। अन्दर की दुनियां में विचरण के समय मन, 'भगवान के तत्व' को अपने में पिरोता है और 'ध्यान के बाद' स्वाभाविक क्रियाओं के समय 'ईश्वरीय तत्व' को वायुमण्डल में फेंक देता है। ज्यों ज्यों समाज में ध्यान का अभ्यास बढ़ेगा - त्यों त्यों 'होने की शक्ति' के सहारे प्राणी का जीवन, निरन्तर निखरता ही चला जाएगा। यह सुन्दर तपस्या, अपने आप होने लगती है।

वायुमण्डल का शुद्ध होना और बढ़ती हुई शुद्धता का सम्पर्क-

मानव जीवन को निखारे-यह तपस्या नहीं तो और क्या है?

तपस्या, किसी विशेष क्रिया का नाम नहीं है-तपस्या, केवल एक प्राकृतिक घटना है। 'ईश्वर की उपासना' अर्थात् -'ईश्वर का ध्यान', निष्क्रियता के द्वारा, जीवन में 'होने की शक्ति' के सहारे - अलग अलग साधनाओं का रूप लेता है।

ईश्वर का ध्यान ही, मन की तपस्या है।

जिस तरह सोना, पूर्णरूप से केवल आग में तप कर ही, निखर सकता है-दूसरी तरह से नहीं, इसी तरह मन-पूर्णरूप से केवल 'अन्दर के आनन्द' से तप कर ही निखरता है। अध्यात्म के क्षेत्र में, महान आत्माओं की अवस्था तक पहुंचने के लिए, मन को गहरे-से-गहरे आनन्द में तपाना पड़ता है। 'अद्वैत चेतना' की अवस्था तक पहुंचने के लिए, 'ईश्वरीय चेतना' की अवस्था का आनन्द चाहिए। वे प्राकृतिक घटनायें (Phenomenon), जिन्हें तपस्या का नाम दिया जा सके-यदि सूक्ष्म स्तर की हैं-तो वे हमेशा ही ऊँची तपस्यायें होंगी और; यदि स्थूल स्तर की होंगी-तो हमेशा ही साधारण तपस्याएं होंगी।

लेखक ने साधना को, हमेशा शिक्षा के रूप में लेने में विश्वास किया है और यह शिक्षा-जीवात्मा की है। सबके शरीर में जीवात्मा और; उसकी अपनी एक अवस्था है। जो भी अवस्था है-वहां से ऊपर उठना है। जीवात्मा को शिक्षित करना, सबसे बड़ी साधना है। साधना, या तो परिश्रम के माध्यम से होगी-जो कि हमेशा स्थूल स्तर की साधना कहलाती है, या 'गहरे आराम के माध्यम' से होगी-जो कि 'ईश्वर के ध्यान' के समय हम लोग-अनुभव करते हैं। **महाभारत** में जिस समय अर्जुन, श्रीकृष्ण भगवान से मिले-उस समय अर्जुन, कर्मकाण्ड की विद्या में पूर्ण थे। कर्मकाण्ड में बहुत ही निपुण होने पर भी, वे जीवन की सारी समस्याओं से ऊपर नहीं जा सके थे। उसी समय श्रीकृष्ण ने उन्हें 'उपासना' द्वारा अलग अलग साधनाओं की विद्या का ज्ञान दिया।

निष्कर्ष, केवल यही निकलता है-जितनी ऊँची साधना, उतनी ऊँची ईश्वर की उपासना। लेखक केवल यही बताना चाहता है कि; सबसे सूक्ष्म स्तर पर-सारी साधनायें, एक ही रास्ते की ओर अभिमुख (Converge) हो जाती हैं। केवल स्थूल स्तर पर, वे अलग अलग साधनाओं के रूप में दिखाई देती हैं। जैसे-

केवल परमाणु के स्तर तक तो परमाणु अलग अलग तत्वों के होते हैं, लेकिन जब विभाजन करके हम; और अतिरिक्त 'सूक्ष्मतम' पर जाते हैं-जैसे इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रान (Electron, Proton and Neutron) को इन स्तरों पर, यह बताना असम्भव हो जाता है-कि; वे किन तत्वों के हैं।

जब तक हम, स्थूल स्तर (नीचे दर्जे) की साधनाओं में व्यस्त रहते हैं-तब तक तप, सेवा और सुमिरन की साधनाओं को साथ लेकर चलना आवश्यक है। यदि साधना बहुत 'सूक्ष्म शक्ति'-ईश्वरीय तत्व के सहारे की हो जाए-तो मात्र एक साधना द्वारा, सब कुछ मिल सकता है। 'ध्यान', ऐसी ही एक साधना है-जो हम लोग, आजकल कर रहे हैं। 'ईश्वर का ध्यान'-सबसे उच्च कोटि की तप, सेवा और सुमिरन-तीनों गुणों से परे है। भ० गीता में श्रीकृष्ण ने भी, यही कहा है। ❑

जीवन के तीन सिद्धान्त

✍ प्रस्तुति : श्री गंगाधर बंसल (09416041346)

जीवन में तीन तरह के सिद्धान्तों की मान्यता है-

प्रकाशवाद, अभाववाद और विकारवाद।

'ध्यान' की जो विधि, मैं सिखाता हूं-वह प्रकाशवाद पर आधारित है।

तीनों में क्या अन्तर है?

सत्य तो यह है कि; ये तीनों सिद्धान्त, जीवन को साधने के लिए हैं-अध्यात्म जगत के नहीं हैं। कहने का अर्थ यह है कि जीवन, लोग प्रायः दो शक्तियों के सहारे साधते हैं-'आध्यात्मिक शक्ति' और 'सांसारिक शक्ति'।

अपने लेखों में मैंने इन्हें 'अखण्ड की शक्ति' और 'खण्ड की शक्ति' कहा है।

अभाववाद : हमेशा ही 'खण्ड की शक्ति' की मदद से जीवन को साधने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, जैसे - डॉक्टर शरीर में तरह तरह के विटामिन और खून की कमी, बहुधा बताते हैं और बाहर की कुछ वस्तुओं के प्रयोग द्वारा भीतर की इन कमियों को दूर करने का रास्ता बताते हैं। इस तरह की 'खण्ड की शक्तियों' के माध्यम से, जीवन को साधने के रास्ते-'अभाववाद के सिद्धान्त पर बनते हैं।

अध्यात्म जगत के लोग-हमेशा से यह कहते रहे हैं कि; ईश्वर अन्दर है-इसलिए 'ईश्वर की शक्ति' भी अन्दर है। इसको मानकर कुछ लोगों ने यह कहा कि; बाहर के सारे दु:खों का कारण भी केवल अन्दर है और ये कारण, जो अन्दर हैं-वे हमारे 'विकार' हैं।

इन विकारों को किसी तरह से निकाला जा सके-

तो हमारे जीवन के दु:ख मिट सकते हैं।

उदाहरण के लिए हमारे देश में कुछ लोग, नित्य सुबह कुछ योग के आसन सिखाते हैं और इनके माध्यम से शरीर के अलग अलग अंङ्गों के विकार को निकालकर, शारीरिक मल को हटाने का प्रयत्न करते हैं। इसके अलावा पूरे संसार में 'प्राकृतिक चिकित्सा' भी 'विकारवाद' के आधार पर ही, की जाती है। इनमें बाहर से अन्दर कुछ नहीं डालते, फिर भी कुछ चीजों का प्रयोग अवश्य होता है-जैसे मिट्टी या 'टब बाथ' का प्रयोग। इसमें पानी का इस्तेमाल होता है। ये सब 'विकारवाद के सिद्धान्त' पर ही, आधारित हैं।

सारे संसार में 'उपवास' भी एक साधना मानी जाती है।

यह साधना भी 'विकारवाद के आधार' पर ही है, लेकिन इधर कुछ दिनों से-कुछ शिक्षकों का मत है कि; उपवास शुरू करने से पहले हमें संतुलित आहार पर आ जाना चाहिए-इस पर आने के लिए, तरह तरह के खान पान के प्रभाव को भी समझना पड़ता है। जैसे-सुबह से 12 बजे तक हम वह भोजन तो कर सकते हैं-जो हमारे अन्दर की सफाई में मदद करे, लेकिन वैसा भोजन नहीं करते-जो सफाई में मदद नहीं करते। इस सिद्धान्त को भी 'विकारवाद के आधार' पर ही माना जाता है-यद्यपि संतुलित आहार के नियम का पालन करने वाले व्यक्ति, कुछ चीजें बाहर से अन्दर भी लेते हैं, जैसे-सफाई में मदद करने वाले भोजन। कुछ लोग नींबू, पानी, शहद भी लेते हैं। कुछ लोग एनिमा भी करते हैं-ऐसे नियमों को मानने वालों का कहना है कि; वे जो कुछ लेते हैं-वह केवल अन्दर से बाहर निकालने में मदद करते हैं, इसलिए वे इसे 'विकारवाद के अन्तर्गत' मानते हैं। लेकिन सत्य यह है कि; जो भी वस्तुयें अन्दर जाती हैं, जैसे -शहद, नींबू, फल या तरह तरह की सब्जियां, उनमें सफाई के अलावा भी कुछ गुण और हैं-उन गुणों के प्रभाव से,

शरीर वंचित नहीं रह सकता। इसलिए कुछ लोग यह भी कहते हैं कि संतुलित आहार का रास्ता, असल में 'विकारवाद' का नहीं-बल्कि 'अभाववाद' और 'विकारवाद' का मिश्रण है।

जहां तक मेरे 'ध्यान' की बात है-मैं यह समझता हूं कि; सबके अन्दर एक जीवात्मा है-जो कि सूर्य की तरह है। इस 'आन्तरिक सूर्य' के प्रकाश की कमी-'आन्तरिक जगत' में और 'बाह्य वातावरण' में सारे दु:खों का कारण है। इस तरह से, मेरे द्वारा बताई हुई 'ध्यान की विधि'-केवल प्रकाशवाद पर आधारित है; अत: अभाववाद और विकारवाद पर नहीं है। ❑

चुप साधना

—स्वामी श्री रामसुख दास

भीतर से ऐसा विचार कर लिया जाय कि; मुझे कुछ करना-है ही नहीं।
न स्वार्थ, न परमार्थ, न लौकिक ओर न ही पारलौकिक-कुछ करना, ही नहीं
ऐसा विचार करके ध्यान में बैठ जायं।

बैठने का बढ़िया समय है-प्रात:, नींद से उठने के बाद।

जैसे गाढ़ी नींद में किंचिन्मात्र भी, करने का संकल्प नहीं था-ऐसे ही जाग्रत अवस्था में किंचिन्मात्र भी करने का संकल्प न रहे। यह जाग्रत में सुषुप्ति है। जप, ध्यान आदि-कुछ नहीं करना है। 'चिन्तन आदि नहीं करना है-यह संकल्प भी नहीं रखना है। 'न करने का संकल्प रखना' भी 'करना' ही है। इस प्रकार चुप होने पर भीतर में कोई संकल्प विकल्प हो, कोई बात याद आये-तो उसकी उपेक्षा करें, विरोध न करें। उसमें न राजी हों और न ही नाराज हों। शास्त्रविहित अच्छे संकल्प आयें-तो उसमें राजी न हों और शास्त्रनिषिद्ध बुरे संकल्प आयें-तो उसमें नाराज न हों।

आप जो यह कहते हैं कि मन बड़ा खराब है, वास्तव में मन अच्छा और खराब-होता ही नहीं। अच्छा और खराब, स्वयं ही होता है। स्वयं, अच्छा होता है-तो संकल्प अच्छे होते हैं और स्वयं, खराब होता है-तो संकल्प खराब होते हैं। अच्छा और खराब-ये दोनों ही प्रकृति के सम्बन्ध से होते हैं। प्रकृति के सम्बन्ध के बिना, न अच्छा होता है और न ही बुरा होता है। जैसे सुख और दु:ख दो चीज हैं, पर आनन्द में दो चीज नहीं हैं-अर्थात् आनन्द में न सुख है, न दु:ख है। ऐसे ही प्रकृति के सम्बन्ध से रहित तत्व में-न अच्छा है, न बुरा है। इसलिए अच्छे और बुरे का भेद करके, राजी और नाराज न हों।

संकल्प-आयें अथवा जायें, उसमें पहले से ही यह विचार कर लें कि;
वास्तव में संकल्प आता नहीं है-यह तो जाता है। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-श्री राकेश गर्ग, केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001
मोबाईल : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से दोपहर 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 3 से 4 बजे सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक (Practical) और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 3 बजे से सायं 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं:-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER